प्रवचन नं. २८ गाथा-७ ता. ८-७-७८ शनिवार अषाढ सुद-३ सं.२५०४

समयसार सातवीं गाथा, भावार्थ। उसका दूसरा पैराग्राफ फिरसे भावार्थ का दूसरा पैराग्राफ।

पहले - ऐसा कहा कि, आत्मा जो वस्तु है, यह तो अनंत गुण पी गया ऐसी एकरूप एकवस्तु है, अभेद चीज है। उसमें पुण्य और पाप का भाव वह तो दूर रहा, क्योंकि वह तो अशुद्ध है, वह तो दृष्टि के विषय में नहीं और दृष्टि का विषय उस वस्तु में नहीं। क्या कहा ? कि आत्मा जो है वस्तु वह तो अनंत धर्म अर्थात गुणों का एकरूप द्रव्य है, तब उसमें विकार तो है नहीं, शुभ-अशुभ भाव कर्म के निमित्त के संग से, आश्रय से उत्पन्न होता है, यह तो वस्तु में है नहीं, तब दृष्टि के विषय में भी यह आते नहीं, अब एक चीज, एक समय में अनंत गुणरूप अभेद वस्तु, परंतु इस अभेद धर्मी को नहीं जाननेवाले, धर्म अर्थात गुण को जानते है। उसको धर्म द्वारा अभेद को बताया कि यह ज्ञान वह आत्मा, दर्शन वह आत्मा, ऐसे भेद करके बताया, यह अभेद में भेद करना सो व्यवहार है। समझ में आया? और यह भेद वह दृष्टि का विषय नहीं। दृष्टि, सम्यग्दर्शन का विषय तो अभेद अनंत गुणों का एकरूप द्रव्य यह द्रव्य उसका विषय है। तो, यहाँ प्रश्न किया।

यहाँ कोई कह सकता है, कल आया था। यह बात की उसमें कोई प्राणी प्रश्न कर सकते है क्योंकि जो भेद है उस आत्म वस्तु में गुण भेद है, यह आत्मा में तो है उसे व्यवहार क्यों कहा ? उसमें न हो ऐसी वस्तु को व्यवहार कहो तब बराबर है परंतु उस आत्मा में यह ज्ञान है दर्शन है आनंद है उसमें पर्याय भी निर्मल है और तुम भेद को व्यवहार कहते हो, तब व्यवहार तो उसको कहा जाता है कि (जो) उसमें न हो और परवस्तु को व्यवहार कहा जाता है। समझ में आया ? सूक्ष्म विषय है अपूर्व। यहाँ कोई यह कह सकता है, यहाँ - ऐसा प्रश्न कर सकते है कि पर्याय भी द्रव्य का भी भेद है, यह गुण और गुणी की निर्मल पर्याय, वह तो वस्तु का ही भेद है, वस्तु की यह चीज है, वस्तु में है, है न ? भेद, द्रव्य के ही भेद है, वस्तु का भेद है अवस्तु नहीं, यह कहीं पर चीज (नहीं) जिसे स्व की अपेक्षा से अवस्तु कहने में आये ?

स्ववस्तु अस्ति इस अपेक्षा यह शरीर वाणी मन कर्म स्त्री-कुटुंब, देव-गुरु-शास्त्र यह तो अन्य है, तब अन्य तो आत्मा में है नहीं, इस कारण व्यवहार कहो तब

यह बात बराबर है। परंतु आत्मा में जो गुणपर्याय है उसी में है तब निश्चय से है। उसको तुम व्यवहार कहते हो तब उसका क्या कारण है ? प्रश्नकार का - ऐसा प्रश्न हो सकता है - ऐसा भी कहा, समझ में आया ? ऐसी बात है, है ?

यहाँ कोई यह कह सकता है कि पर्याय भी द्रव्य का भेद है अवस्तु नहीं, यह कहीं परवस्तु नहीं, तब फिर उन्हें व्यवहार कैसे कहा जा सकता है ? अपनी पर्याय अपने में है, अपना गुण अपने में है, अतः (जो) स्व में हो तो निश्चय है, तब जो स्व में है उसे भेद बताकर व्यवहार कहते हो वह कैसे है ? समझ में आता है।

स्व वस्तु अस्ति इस अपेक्षा से शरीर, वाणी, मन, कर्म, स्त्री, कुटुंब, देव, गुरु, शास्त्र यह तो अन्य है। तब अन्य को तो जो आत्मा में नहीं, इस कारण व्यवहार कहो तब यह बात बराबर है, परंतु आत्मा में जो गुण और पर्याय है उसी में है अतः निश्चय से है। उसको तुम व्यवहार कहते हो तब उसका क्या कारण है ? हमारा प्रश्न तो, प्रश्नकार का - ऐसा प्रश्न हो सकता है - ऐसा भी कहा। समझ में आया। ऐसी बात है, है

यहाँ कोई यह कह सकता है कि पर्याय भी द्रव्य का भेद है अवस्तु नहीं, यह कहीं परवस्तु नहीं, तब फिर उन्हें व्यवहार कैसे कहा जाता है ? अपनी पर्याय अपने में है अपना गुण अपने में है, तब स्व में है तो निश्चय है, तब जो स्व में हो उसको भेद कह कर व्यवहार कहते हो वह कैसे ? समझ में आता है ? आहाहा ! धर्म (की) बात अपूर्व चीज है। पहले कभी किया नहीं, पहले कभी यथार्थ रुचि से सुना नहीं। आहाहा ! तब शिष्य का यह प्रश्न कि तब फिर उन्हें व्यवहार कैसे कहा जा सकता है ? जब उसमें है, उसमें न हो, उसको तो व्यवहार कहो, उसमें है वह तो निश्चय हुआ, `स्व निश्चय पर व्यवहार' प्रश्नकार कहता है, उसका समाधान। यह प्रश्न का रूप, प्रश्नकार का यह रूप, कि जो चीज है भगवान आत्मा उसमें अनंतगुण है और पर्याय भी है, अथवा यह गुणरूपी भेद यह पर्याय है, वस्तु है उसमें यह गुण भेद है - ऐसा तो उसमें है है उसको आप व्यवहार कैसे कहो ? उसमें न हो उसको व्यवहार कहो तो व्याजबी है, समझ में आया ? आहाहाहा !

समाधान :- यह ठीक है तुम्हारी बात इस अपेक्षा से तो ठीक है, कि पर को व्यवहार कहना, अवस्तु को व्यवहार कहो, अपने में है उसको व्यवहार क्यों कहते हो ? वह तो अपने में है, कि तुम्हारा प्रश्न ठीक है, परंतु उसमें समझने की चीज है। आहाहा !

`किन्तु यहाँ द्रव्यदृष्टि से अभेद को प्रधान करके उपदेश है,' यहाँ तो द्रव्यदृष्टि,

द्रव्य, वस्तु उसकी दृष्टि कराने को और दृष्टि का विषय जो अभेद है, उसकी मुख्यता से कथन करने में आया है। ***त्रिकाली चीज जो ज्ञायकभाव... उसमें गुणभेद है वह भी दृष्टि का विषय नहीं और गुण भेद है यह गुणी में भिन्न गुण और भिन्न गुणी - ऐसा नहीं। गुणी में गुण अभेद है, द्रव्यदृष्टि से अभेद को प्रधान करके उपदेश दिया है, आहाहा ! अभेद दृष्टि में भेद तो गौण (है), है तो अवश्य, परंतु वह भेद गौण करके अभाव करके नहीं।*** आहाहा ! आत्मा में ज्ञान-दर्शन आनंद है, तब इस अपेक्षा से तो वह निश्चय है, परंतु यहाँ दृष्टिप्रधान कथन करने से, अभेद की दृष्टि कराने को तथा दृष्टि का विषय अभेद है उसकी प्रधानता से कथन करने को भेद को गौण कहने से, है न ? द्रव्यदृष्टि से अभेद को मुख्य करके उपदेश दिया। अभेद दृष्टि में भेद को गौण कहने से, आहाहा ! आत्मा वस्तु है, उसमें अनंत गुण होने पर भी, अभेद में भेद को गौण कहने पर उसके साथ में मुख्यरूप लेने से अभेद सिद्ध नहीं होता। समझ में आया ? आहाहाहा ! **`अभेद में भेद को गौण करने से ही अभेद भली भांति मालूम हो सकता है,`** गुण अंदर में है परंतु अभेद की दृष्टि कराने को (जो) भेद है, उसको गौण करके उसमें नहीं है, अभेद (की) दृष्टि कराने को उसमें भेद है नहीं। आहाहा ! ऐसी बात है। यहाँ अभेद बिना निर्विकल्पता होगी नहीं। भेद में लक्ष्य जायेगा तो विकल्प राग उत्पन्न होगा सम्यग्दर्शन उत्पन्न नहीं होगा, आहाहा ! समझ में आया ? मार्ग बहुत सूक्ष्म भाई, मार्ग सूक्ष्म और अपूर्व। आहाहा !

अभेद में भेद को गौण कहने से अभेद भलीभांति मालूम हो सकता है। अभेद में भेद भी कहने में आये तो अभेद दृष्टि में आता नहीं, भेद दृष्टि में आता है, जब भेद दृष्टि में आये तब अभेद दृष्टि में आये नहीं और भेद की दृष्टि करने से राग की उत्पत्ति होती है यह आगे कहेगें। (अतः अभेद) भली भाँति मालूम नहीं हो सकता है।

`इसलिये भेद को गौण करके उसे व्यवहार कहा है,` है तो उसमें उसकी गुण और पर्याय, जैसे पर चीज उसमें त्रिकाल नहीं, कर्म देव, शास्त्र, गुरु, स्त्री, कुटुंब, परिवार, लक्ष्मी, मकान वह चीज तो स्वभाव में त्रिकाल है ही नहीं, तथा यह गुण और पर्याय तो उसमें है, परंतु अभेद (की) दृष्टि कराने को भेद को गौण करके व्यवहार कहने में आया है। (श्रोता :- गुण तो द्रव्य में है परंतु कहाँ (द्रव्यमें) है ?) उत्तर :- यह गुण और पर्याय दोनों संयुक्त। पर्याय कहो कि गुण कहो, पर्याय अर्थात गुणों का भेद, पर्याय अर्थात गुणों में भेद। (श्रोता :- वह तो प्रमाण (के विषय) में होती है) यहाँ यह काम (बात) नहीं - ऐसा। ***यहाँ तो पर्याय कहो कि गुण कहो,***

द्रव्य में भेद होता है, वह पर्याय है वही गुण है भेद यही गुण है। यह गुण कहो कि पर्याय कहो कि भेद कहो जैसे कि वह समुद्र में पी गया है न, अनंती पर्याय और गुण, द्रव्य अंदर में पी गया है अभेद है, समझ में आया ? (श्रोता :- सम्यग्दर्शन के विषय में तो पर्याय नहीं है) पर्याय विषय है परंतु गौण करके कहा, भेद है तो, (उसे) गौण करके कहा, तब पर्याय भी तो है गौण करके, आत्मा में है ही नहीं ? है यह सूक्ष्मबात है भाई। आहाहा ! सातमी गाथा (चलती) हमारा सेठ ठीक समय पर आये है सभी ठीक-गाथा में बराबर आया है सातवीं गाथा सर्वोत्कृष्ट है, आहाहा !

गुण को पर्याय भी कहते हैं। सहचर पर्याय सर्वविशुद्ध (अधिकार में) आता है न ? भाई पर्याय सहवर्ती और क्रमवर्ती दोनों आती है सर्व विशुद्ध अधिकार में। यह तो शांति और धीरज से समझने की चीज है। यह कोई कहानी, कथा है नहीं। यह तो तीनलोक का नाथ चैतन्यवृक्ष आया था न फल, अमृतफल लगें, अमृतफल - ऐसा चैतन्य वृक्ष है, तब इस चैतन्यवृक्ष को दृष्टि में लेने को, अभेद को बताना है, अभेद में भेद करने से अभेद अच्छी तरह मालूम होता नहीं। उसमें है अवश्य परंतु अभेद बताने में भेद देखें तो अभेद बराबर दिखाई नहीं देता। आहाहा !

`**यहाँ यह अभिप्राय है, कि भेद दृष्टि में भी निर्विकल्पदशा नहीं होती**' यह कल आया नहीं था। कल यहाँ तक तो आया था, क्या कहते हैं ? भेददृष्टि में अभिप्राय आशय यह है कि वस्तु जो है अभेद अनंतगुण पी गया है, ऐसी जो वस्तु उसे भेद करके दिखाना, तब भेद में निर्विकल्पदशा नहीं होती, **गुणभेद ऊपर दृष्टि जाती है। तो विकल्प** (एवं) **राग ही उत्पन्न होता है, और अभेद ऊपर दृष्टि होने से निर्विकल्प अर्थात अरागी दृष्टि होती है। समकिती अरागी है।** आहाहा ! बहुत सूक्ष्म भाई ! मार्ग अपूर्व है, अनंतकाल अनंतकाल अनंतकाल में कभी (धर्म) एक सेकेण्ड मात्र किया नहीं और उल्टे रास्ते चढ़ गये। यहाँ कहते हैं कि प्रभु एकबार सुनो तो। आहाहा !

भगवान कहकर बुलाते है, आत्मा को तो प्रभु... आचार्य, ७२ गाथा में भगवान कहकर बुलाते है, भगवान एकबार सुन तो सही। आहाहा ! आहा ! तुम्हारी वस्तु तो शक्ति गुण पर्याय में अभेद (है) अर्थात (द्रव्य) पी गया है। द्रव्य में एकरूप यह चीज है। इस एक में अनेकपना नहीं दिखता है। अनेकपना देखने जायें तो एकपना दिखता नहीं, एकपना कहो कि अभेद कहो। आहाहा ! समझ में आये - ऐसा है, हाँ। नहीं समझ में आये - ऐसा नहीं। भाषा तो सरल है।

यहाँ यह आशय है अभिप्राय है, भेद दृष्टि में यह गुणी है उसमें ज्ञानादिक गुण है ऐसी दृष्टि से विकल्प उत्पन्न होता है। निर्विकल्प अरागी दृष्टि उसमें उत्पन्न

नहीं होती। आहाहा ! निर्विकल्प सम्यग्दर्शन जो निर्विकल्प अरागीदृष्टि है जो भेद के लक्ष्य से उत्पन्न होती नहीं। बराबर है भैया ? आहाहाहा ! - ऐसा मार्ग है। अगम्य गम्य, परंतु बाहर की प्रवृत्ति यह करो यह करो और यह करो (उसमें) फंस गया। यहाँ तो वस्तु जो एकरूप है (उसमें) यह भेददृष्टि करने से राग उत्पन्न होता है, अभेद में जो निर्विकल्प अरागीदृष्टि होती है वह भेद (की) दृष्टि में नहीं होती। समझ में आया ? ***अभेद दृष्टि में गुण और गुणी का भेद न करके द्रव्य अखण्ड अभेद है, अचिंत्य अनंत अनंत गुण का एकरूपी धर्मी, ऐसी अभेददृष्टि करने से निर्विकल्प अर्थात राग रहित सम्यग्दर्शन उत्पन्न होता है*** और भेददृष्टि में निर्विकल्प अरागीदृष्टि उत्पन्न नहीं होती। भेद दृष्टि में तो विकल्प अर्थात राग उत्पन्न होता है आहाहा ! भाषा तो सरल है न ?

यह सेठ लोगों के कारण हिन्दी भाषा होती है, हिन्दी भी सरल है, कोई ऐसी कठिन तुम्हारी जैसी नहीं। आहाहाहा ! वस्तु विश्वदर्शन ऐसी जो चीज है, यह तो विश्व को जाननेवाली चीज है, विश्व को अपने में रखनेवाली वस्तु नहीं। आहाहा ! और भेद को रखनेवाली वस्तु है, परंतु भेदसे अभेद की दृष्टि छोड़कर भेद की दृष्टि करने से सम्यग्दर्शन अरागी निर्विकल्प अनंतकाल में कभी हुआ नहीं, यह भेद दृष्टि में होता नहीं। चीमनभाई इसमें तुम्हारे वहाँ लोढे-बोढे में कुछ है नहीं, कहीं है नहीं, भाई बड़े भाई कहते हैं लोहा है वहाँ। आहाहा ! परमात्मा त्रिलोक नाथ जिनेश्वरदेव की वाणी यह है। संत (गुरु) जिनेश्वर ने जो कहा वह आड़तिया होकर जगत को बताते हैं। माल तो यह है। आहाहा ! प्रभु एकबार सुन तो सही, तुम्हारी वस्तु में सुनना वह भी एक विकल्प है आहाहा ! वह भी दृष्टि के विषय में आता नहीं और विकल्प आया सुनने का वह भी दृष्टि के विषय में आता नहीं। दृष्टि के विषय में सुनना तो आता नहीं, तीर्थंकर तीनलोक के नाथ की दिव्यध्वनि सुनना वह दृष्टि के विषय में आता नहीं और सुनने में जो विकल्प आता है, वह भी दृष्टि के विषय में आता नहीं। परंतु गुण-गुणी का भेद है वह भी दृष्टि के विषय में आता नहीं। आहाहा !

`भेददृष्टि में भी.....' क्या कहते हैं ? निर्विकल्प दशा नहीं होती `भी' क्यों लिखा ? जैसे अपने अतिरिक्त (अलावा) अन्य चीज का लक्ष्य करने से निर्विकल्प नहीं होता। जैसे भगवान आत्मा उससे अन्य द्रव्य जो है तीर्थंकर और तीर्थंकर की वाणी उसके लक्ष्य से निर्विकल्प दृष्टि नहीं होती, वह तो परवस्तु है। जैसे परवस्तु के लक्ष्य से निर्विकल्प दृष्टि नहीं होती। अर्थात सम्यग्दर्शन अभेद की दृष्टि नहीं होती। आहाहा ! भेददृष्टि में भी - ऐसा कहा न `भी' कहा ना ? `भी' क्यों कहा, कि अन्य आत्मा

के अलावा देव-गुरु-शास्त्र की दृष्टि से भी सम्यग्दर्शन नहीं होता। निर्विकल्पता नहीं होती। देव-गुरु-शास्त्र के लक्ष्य से भी निर्विकल्पता नहीं होती। यह तो ठीक, परंतु भेददृष्टि से भी निर्विकल्पता नहीं होती। आहाहा ! - ऐसा मार्ग है।

वीतराग सर्वज्ञ परमेश्वर जिन्होंने एक समय में तीनकाल, तीनलोक, एक समय की पर्याय में देख लिया है। परलोक को, पर देखना यह तो असद्भूत व्यवहार है, परंतु पर्याय में इतनी ताकत है पर्याय को देखे तो सब देख लिया। आहाहा !

यह भगवान सर्वज्ञ परमेश्वर की दिव्यध्वनि में आया और उसकी रचना आगम में हुई। उस आगम की रचना के अंदर का यह समयसार आगम की रचना है। आहा ! तो यह वीतराग की ही वाणी है। तब वीतराग सर्वज्ञ परमेश्वर जगत को बतलाते हैं जैसे तुम्हारी चीज के अलावा अनंती दूसरी चीज है, उनके लक्ष्य से विकल्प उत्पन्न होता है, निर्विकल्प नहीं होता। आहाहाहाहा ! इसीप्रकार भेद (की) दृष्टि से भी, आहाहा ! अंतर में गुणी में गुण है ऐसी भेददृष्टि करने से भी निर्विकल्प नहीं होता और निर्विकल्प हुये बिना सम्यग्दर्शन नहीं होता। आहाहा ! भाई !

भाई ने प्रश्न किया, तब रामजीभाई ने (कहा) कि उसमें निर्विकल्पता आती है कहीं यह जगमोहनलालजी की टीका में। आहाहा ! यहाँ तो निर्विकल्पता ऊपर वजन है। (श्रोता :- उसको तो विचार ही करना आता) - ऐसा कहा था यह पढ़ते हैं न पढ़ेंगे, परंतु यह ध्यान में नहीं, निर्विकल्पता का !

यहाँ क्या ? क्या कहना है ? प्रभु तुम्हारी जब निर्विकल्प दृष्टि हो, तब सम्यग्दर्शन होता है, तब निर्विकल्प दृष्टि (अर्थात) सम्यग्दर्शन तो अभेद की दृष्टि करने से होता है, भेद की दृष्टि करने पर भी, जैसे अन्य की दृष्टि करने से भी राग उत्पन्न होता है, ऐसे भेददृष्टि करने से भी राग उत्पन्न होता है, आहाहा ! ऐसी बात। (श्रोता :- बहुत सुन्दर, ऐसी बात वीतराग की ही होती) आहाहा ! गजब बात है और यथार्थ लौजिक, न्याय से युक्ति से... समझने में कठिन लगे परंतु समझना तो यह है, शेष तो सब किया बेकार बकवास, साधु होकर पंचमहाव्रत और नग्नपना और यह अनन्त बार लिया, बकवास है उसमें। आहाहा !

यहाँ तो यह पंचमहाव्रतादिक का परिणाम तो अशुद्ध है, वह तो दृष्टि का विषय नहीं, परन्तु गुण-गुणी का भेद भी दृष्टि का विषय नहीं, क्योंकि भेद के लक्ष्य से भी, निर्विकल्पता नहीं होती, भैया ! समझ में आता है ? छोटे है, छोटे है ? बड़े है तुम्हारे से अच्छा। समझ में आया ? भगवान है न आत्मा यहाँ तो..... आहाहा ! अंदर भगवान स्वरूप प्रभु अतीन्द्रिय आनंद का कंद एकरूप वस्तु है। आहाहा ! इसमें कितनी शैली से कहते हैं। आहाहा ! पण्डित(जी) अर्थ करते है, उस समय के पण्डित

भी कैसे ? हाँ ? आहाहाहा ! जयचन्द्रजी पण्डित... दो सौ साल पहले के तो पण्डित लोग भी... अभी तो बदलाव बहुत हो गया है।

और यहाँ अभेद से समकित होता है, व्यवहार राग से तो नहीं परंतु भेद से भी नहीं। तो यह.....भी निश्चयाभास है - ऐसा कहते हैं, अरे ! प्रभु सुन तो सही। आहाहा ! ***जिसके ऊपर दृष्टि देना है वह एकरूप न हो तो दृष्टि निर्विकल्प होती नहीं, जिसके ऊपर दृष्टि देना है यह एकरूप न हो तो दृष्टि वहाँ टिक सकती नहीं, अनेक हो तो दृष्टि अनेक में रह सकती नहीं।*** आहाहा ! ***स्थिर बिम्बप्रभु अंदर चैतन्य बिम्बप्रभु ध्रुव अभेद तो दृष्टि अपेक्षा अभेद है एकरूप है तो दृष्टि स्थिर हो जायेगी, तब दृष्टि वहाँ एकाकार हो जायेगी,*** भेद पर दृष्टि करने से भेद और अभेद हो गया तो दृष्टि अनेक में रहती है ऐसे यहाँ एक में आये बिना वीतरागता होती नहीं, निर्विकल्प सम्यग्दर्शन होता नहीं, बराबर है ? आहाहा !

भगवान तीनलोक के नाथ परमात्मा का विरह हुआ, भरत (क्षेत्र) में, परंतु भगवान की वाणी रह गई (शेष रही) आहाहा ! कुन्दकुन्दाचार्य संतोने वहाँ जाकर आठ दिन रहकर संग्रह किया, वह यहाँ बताया (है) आहाहा ! कहते हैं भेददृष्टि में भी... क्या किया ? आहाहा ! अपनी चीज जो अंदर है एकरूप वस्तु इसके अलावा अनेक दूसरी वस्तु अनेक अनंत है, अनंतसिद्ध है, केवली संख्यात है, तीर्थंकर बीस है, आचार्य उपाध्याय भी संख्यात है, गणधर (भी) है साधु है परंतु तुम्हारी वस्तु से वह वस्तु भिन्न है तब भिन्न वस्तु है तो तुम्हारी अपेक्षा उसको व्यवहार कह दिया परंतु व्यवहार कहा तो उसके आश्रय से निर्विकल्पता उत्पन्न नहीं होती। आहाहा ! पंचपरमेष्ठी के आश्रय से भी निर्विकल्पता नहीं क्योंकि, यह तो पर द्रव्य है, तो परद्रव्य के आश्रय से जैसे निर्विकल्पता नहीं होती इसीप्रकार भेद की दृष्टि से भी निर्विकल्पता नहीं होती। समझ में आये ऐसी चीज है, भाषा सरल है भगवान। आहाहा !

चीज बहुत अलौकिक है, ठीक आये हो, टाइमसर आये है भैया ! आहाहा ! यह विषय चलता हो तब स्पष्टीकरण हो सके न ! आहाहा ! पण्डितजी के शब्द भी कैसे हैं, अभेद, भेद को गौण करने से अभेद भली भाँति मालूम हो सकता है, इसलिये भेद को गौण करके उसे व्यवहार कहा है। है तो उसकी वस्तु परंतु उसको गौण करके व्यवहार कहा (है) पर (वस्तु) तो अपने में नहीं इसलिये व्यवहार कहा परंतु यह भेद तो (वस्तु में) है अपितु (उसे) गौण करके व्यवहार कहा (है)। आहाहाहा ! समझ में आया ? क्योंकि ***मुख्य त्रिकाली अभेद (की) दृष्टि कराने को, अभेद की प्रधानता बताने को भेद को गौण करके व्यवहार कहा,*** आहाहाहाहा ! यह बात सुनना (श्रोता :- भाग्य की बात है।) भाग्य की बात है बापू !

अरे परमात्मा का विरह हुआ, और केवलज्ञान रहा नहीं। आहाहा ! और वह ऐसी वस्तु संतो के हृदय में रह गई। दिगम्बर मुनिओं (धन्य)। आहाहा ! मध्यस्थ से थोड़ा विचार करें, आग्रह छोड़कर तब उसकी समझ में आये कि मार्ग यह है - ऐसा दूसरा कहीं है नहीं। आहाहा ! समझ में आया ? उसमें तो श्वेताम्बरों में अरहंतो महादेवो बस अरहंतों महादेवो, गुरु ऐसे और शास्त्र ऐसे यह धर्म यह समकित, मोक्षमार्ग (प्रकाशक) में आता है, आता है न ? मोक्षमार्ग (प्रकाशक) के पांचमें अध्याय में। यहाँ तो कहते हैं प्रभु एक बार सुन तो प्रभु ! अरहंत का लक्ष्य करने से तो तुम्हें विकल्प (होगा) क्योंकि यह परवस्तु है। आहाहाहा !

पंचपरमेष्ठी की श्रद्धा करने जायेगा, प्रभु यह तो पर-द्रव्य है न नाथ तो परद्रव्य तो तुम्हारी अपेक्षा अवस्तु (है) अवस्तु में दृष्टि करने से राग ही होगा। आहाहा ! तब वह तो ठीक परंतु अभेद में भेद करने से भी राग उत्पन्न होगा, निर्विकल्पता नहीं होगी, आहाहा ! और निर्विकल्प सम्यग्दर्शन बिना, धर्म की शुरूआत होती नहीं। आहाहा ! जगत का भाग्य कि यह समयसार जैसी चीज रह गई (बच गई) आहाहा ! (श्रोता :- परम कल्याण की बातें है)

`भेददृष्टि में निर्विकल्पदशा नहीं होती और सरागी को विकल्प होते (रहते) है' अब भाषा समझे... भेद को जानने से जो राग उत्पन्न हो तब केवली को... केवली भी भेद को जानते है, केवली तो लोकालोक को जानते हैं और अपने द्रव्य-गुण-पर्याय को जानते है, तो उनको भी राग होना चाहिए। समझ में आया ? (तब) कहते हैं कि सरागी को विकल्प उत्पन्न होता है, और तुम तो रागी हो, अभी तुम तो रागी हो, तुम रागी हो इसकारण से भेद का लक्ष्य करने जायेगा, तो रागी (होने) के कारण राग उत्पन्न होगा। भेद का जानना वह राग का कारण नहीं। परंतु तुम रागी प्राणी हो भेद ऊपर तुम्हारी दृष्टि जायेगी तो तुम्हें राग है इसलिये राग उत्पन्न होगा। आहाहा !

भगवान तो भेद, द्रव्य, गुण, पर्याय, त्रिकाल जानते हैं। उनको क्यों राग नहीं होता ? भेद को जानना यह राग का कारण हो तो केवली तो सब को जानते है। परंतु तुम रागी प्राणी हो, अल्पज्ञ हो और तुम एक अभेद विषय को छोड़कर भेद का लक्ष्य करोगे तो तुम्हें राग के कारण राग उत्पन्न होगा। आहाहा ! समझ में आया ? भैया, आहाहा ! देखो यह दिगम्बर संतो का भाव। आहाहाहा ! और निर्विकल्पता, पर्याय तो रहेगी - ऐसा तो यहाँ सिद्ध करते हैं, अकेला द्रव्य ही है - ऐसा नहीं, द्रव्य का लक्ष्य करने से, द्रव्य की दृष्टि करने से पर्याय में अरागी निर्विकल्पता होगी, जो पर्याय में पर का लक्ष्य करने से राग होता है इसीप्रकार

पर्याय में भेद का लक्ष्य से भी राग (होता) रागी है इसकारण। आहाहा ! समझ में आया ? आहाहा !

भेददृष्टि में भी निर्विकल्पदशा नहीं होती और सरागी को विकल्प होते रहते हैं। रागी प्राणी है अल्पज्ञ है, तब भेद करने जायेगा तो अभेद की दृष्टि छूट जायेगी और भेद के लक्ष्य से तुमको राग ही उत्पन्न होगा, क्योंकि रागी हो इसलिये। भेद का ज्ञान करना वह राग का कारण हो तो तब केवली सब तीनलोक, तीनकाल (का) सब जानते है, किन्तु (उन्हें) राग नहीं, तुम में राग है और तुम रागी प्राणी हो तब एक का लक्ष्य छोड़कर दूसरे ऊपर लक्ष्य जायेगा, तो रागी (होने) के कारण तुम्हें भेददृष्टि से राग उत्पन्न होगा। समझ में आया ? आहाहाहा ! ऐसी बात है, कैसी जाति का यह उपदेश होगा ! बापू मार्ग यह है भाई ! आहाहा ! दुनियाँ कहे, दुनियाँ - ऐसा कहे कि एकांतवाद है, कानजीस्वामी का एकांतवाद है। - ऐसा कह करके, ग्रंथ (मंदिर से बाहर) निकाल दो। प्रभु तुम्हें क्या पड़ी है। आहाहाहा ! यहाँ क्या कहते हैं ? इसी शैली का तो यह ग्रंथ है, यहाँ (सोनगढ) का बना हुआ नहीं। भाई तुम्हें खबर नहीं प्रभु। आहाहा !

अपनी दया कब करोगे ? कि पर के लक्ष्य से जैसे राग और हिंसा होती है तुम्हारी, ऐसे ही भेद के लक्ष्य से राग और हिंसा होती है तुम्हारी। आहाहाहाहा ! समझ में आया ? जैसे पर की दया का भाव राग है हिंसा है, राग यह अपनी हिंसा है, इसीप्रकार भेद की दृष्टि करने जाओगे (तो) तुम रागी हो तब राग होगा। स्वरूप की हिंसा होगी। आहाहा ! ***स्वरूप निर्विकल्प और अभेद है यह तुम्हारी दृष्टि में नहीं रहेगा, और भेद ऊपर जायेगा तो राग होगा, राग होने से अभेद वस्तु की दृष्टि का अभाव होगा यह तुम्हारी वस्तु की हिंसा है।*** आहाहा ! ऐसी वस्तु है, कुछ भी करें यह समझना ही पड़ेगा, अन्यथा मर भी जाय तब भी भवभ्रमण नहीं मिटेगा। आहाहा ! आहाहा ! पण्डितजी ने भी कैसा अर्थ भरा है देखो न...? पुराने पण्डित, अभी तो कोई - ऐसा (है) नहीं। आहाहा !

भेद दृष्टि से भी वीतरागता नहीं होती, वीतरागता अर्थात निर्विकल्पता, वीतराग है वह ही सम्यग्दर्शन एवं, धर्म है, ***सम्यग्दर्शन यह वीतरागी दर्शन है, यह सरागसमकित और वीतरागसमकित यह तो चारित्र के राग की अपेक्षा से कहा। समकित सरागी होता नहीं, समकित तो वीतरागदशा यह ही समकित कहलाता है, आहाहा !*** भेददृष्टि में भी निर्विकल्प दशा नहीं होती। आहाहा ! यह क्यों कहा ? (क्यों)कि प्रश्नकार ने - ऐसा कहा था कि अंदर में गुण और पर्याय हैं, यह अवस्तु नहीं। अवस्तु नहीं तो, तब वस्तु है और वस्तु में तुम राग कहते तो (यह) न्याय नहीं, अवस्तु को तुम

राग की उत्पत्ति करनेवाला, कहो, जो चीज तुम्हारी सत्ता में नहीं उसका लक्ष्य करने से राग उत्पन्न होना कहो तब यब तो तुम्हारी बात बराबर है। परंतु अंदर में है उसका लक्ष्य करने से राग कहो तो वह अवस्तु हो जाती है (जो) उसमें है उसे अवस्तु कहने से, नहीं है - ऐसा हो जायेगा। आहाहा !

सुनो प्रभु ! उसमें है तो सही परंतु भेद की दृष्टि करने से विकल्प उत्पन्न होता है इस अपेक्षा से भेद और पर्याय को, अभेद की अपेक्षा से अवस्तु कहकर, व्यवहार कहकर, अवस्तु कहा। आहाहाहाहा ! समझ में आता है ? - ऐसा उपदेश भी कोई बार सुनने मिला भाई, आहाहा ! (श्रोता :- यहाँ तो रोज (सुनने मिलता) है हाँ ! आहाहा ! क्या शैली ! प्रभु कहते हैं। आहाहा सरागी को विकल्प होते रहते हैं। किस कारण ? भेद के लक्ष्य से राग होता है - ऐसा नहीं, परंतु रागी है तो एक (अभेद) ऊपर लक्ष्य न करके दूसरे (भेद) ऊपर लक्ष्य करेगा तब राग होगा। भेद ऊपर लक्ष्य करेगा तो राग ही होगा और तुम्हें अभेद की दृष्टि करने से निर्विकल्प अरागी सम्यग्दर्शन और आनंद, आनंद की दशा प्रगट होगी। आहाहाहा !

भेद का लक्ष्य करने से प्रभु तुम्हें राग होगा और तुम्हें दुःख होगा। क्योंकि तुम रागी हो, तब भेद ऊपर लक्ष्य करोगे तो दुःखी तो हो, फिर दुःख उत्पन्न होगा। आहाहा ! देवीलालजी ! - ऐसा कहाँ है ? है तुम्हारे स्थानकवासी में ? (पूरे हिन्दुस्तान में नहीं) इनके भाई है न अभी स्थानकवासी (श्रोता :- यह बात तो नहीं परंतु इस बात की गंध भी नहीं) यह चीज तो क्या है बापू ! आहाहा ! जिसके मत में सर्वज्ञ त्रिलोकनाथ सर्वज्ञ, प्रत्येक आत्मा सर्वज्ञ हो सकता है और सर्वज्ञवत् है - ऐसा भी... जिसके मत में नहीं, उसके मत में यह बात ऐसी आती नहीं। आहाहा ! समझ में आया ? इसलिये सरागी को विकल्प होते रहते हैं, अतः क्या कहते हैं ? तुम रागी प्राणी हो तब एक अभेद ऊपर लक्ष्य करने से तो वीतरागता होगी, अभेद ऊपर यदि भेद ऊपर लक्ष्य करेगा तो (तुम) रागी प्राणी हो अतः राग ही उत्पन्न होगा। आहाहा ! गजब बात है ! व्रत एवं तप तथा भक्ति यह तो राग है इसकी बात तो कहाँ दूर रह गई है। उससे तो सम्यग्दर्शन होता नहीं, परंतु भेद के लक्ष्य से सम्यग्दर्शन होता नहीं। आहाहा ! अरे ! ऐसी बात सुनने को मिले नहीं न यह किस दिन कब निर्णय करे और कब जन्म-मरण का अंत आये ? आहाहा ! और यह जन्म-मरण कर करके भाई जैसे रहटमें से एक वर्तन ऊपर खाली होता और नीचे भरता है... यह रहट होता है न ? रहट नीचे भरता ऊपर (जाकर) खाली, एक जन्म जाता तब दूसरा जन्म तैयार। आहाहा ! और वह भी कैसा जन्म, आहाहा ! मनुष्यपने का जन्म यहाँ करोड़पति हो बंगले में (रहता हो) अरबपति अरे मांस और दारू कदाचित

न (खाता) हो। आहाहा ! मरकर पशु में जाय ऐसे भव अनंत किये हैं। प्रभु ! आहाहा !

यहाँ तो पंचपरमेष्ठी की श्रद्धा से भी राग उत्पन्न होता है, क्योंकि वह परद्रव्य है, और मोक्ष अधिकार में - ऐसा कहा है मोक्षपाहुड, **`पर दव्वाओ दुग्गई`** ओहोहो ! वीतरागी संत कहें... जिन्हें किसी की पड़ी नहीं, हमें मानने में भी तुम्हें राग होगा, क्योंकि हम परद्रव्य हैं आहाहा ! तुम्हें स्वद्रव्य अभेद में दृष्टि करने से तुम्हें अरागी दशा उत्पन्न होगी। आहाहा ! बात तो बहुत सरल और संक्षिप्त है... हाँ। आहाहा ! निहाल होने की बात है भैया प्रभु। हानि का धंधा कर करके मर गया चौराशी में, यहाँ तो कहते हैं कि पंचपरमेष्ठी की शरण लेने जायेगा हो यह तो परद्रव्य है, परद्रव्य से तो दुर्गति होगी, दुर्गति अर्थात उसमें चैतन्य का फल नहीं आयेगा। गति का फल आयेगा कोई स्वर्ग आदि, तब यह तो दुर्गति है यह कहीं चैतन्य गति सिद्ध (गति) नहीं आहाहा ! कठिन काम लगे ?

लोग चीख चिल्लाहट करते है सोनगढ़ तो एकांतवाद है, एकांतवाद है, प्रभु तुमने सुना नहीं भाई ! प्रभु तुम क्या कहते हो, हाँ ! (श्रोता :- ऐकांती को, एकांत और अनेकांत की परिभाषा खबर नहीं। मध्यस्थ प्राणी हो तो वह कहे कि यह देखो ! कल पत्र आया था, हिम्मतलाल (का) बनारस के शास्त्री, एकबार यह पुस्तक पढ़ी बेन की वहाँ, आहाहा ! (श्रोता :- प्रमोद कैसा कितना प्रमोद) हाँ ! आहाहा ! लोग यह पढ़ेंगे देखेंगे तब उन्हें लाभ होगा। - ऐसा विचारा शास्त्री बनारस का बापू ! इसमें कहाँ कोई पक्ष की बात है ? भाई... आहाहा ! आहाहाहा !

`सरागी के विकल्प होते है इसलिये, इसकारण, रागी को राग (होता) इस कारण भेद ऊपर लक्ष्य करने से राग उत्पन्न होता है' इसलिये जहाँ तक रागादिक दूर न हों रागादिक विकल्प दूर न हों, नहीं हो जाते वहाँ तक भेद को गौण करके, वहाँ तक भेद को गौण करके, अभेदरूप निर्विकल्प अनुभव कराया गया है। आहाहा ! जहाँतक राग है वहाँ तक भेद को गौण करके अभेद की दृष्टि कराई है आहाहा ! राग छूटने के बाद अभेद और भेद दोनों को जानें। आहाहा ! जानने में कोई... वस्तु भेदाभेद है तो जानों, परंतु फिर जब तक राग है तब तक तुम्हारा लक्ष्य पर ऊपर जायेगा, भेद ऊपर, तब राग ही होगा, तब जहाँ तक रागादिक दूर नहीं हो जाते, आहाहा ! वहाँ तक पर का लक्ष्य छोड़ना और भेद को गौण करना, उसमें (आत्मा में) पर्याय है, गुण है उसको गौण रखना और मुख्य अभेद को करना। आहाहाहा ! समझ में आया ? पर्याय को गौण करके अभेदरूप निर्विकल्प अनुभव कराया है। आहाहाहा ! अभेद वस्तु भगवान आत्मा (का) निर्विकल्प अनुभव कराया गया है। यह पर्याय हुई, अभेदरूप की दृष्टि करने से निर्विकल्प अनुभव कराया गया है, राग रहित

अनुभव कराया गया है, वह वीतराग मार्ग है और यह वीतराग समकित है तथा यह जैन शासन है। आहाहाहा ! समझ में आया ?

वीतराग होने के बाद, `**वीतराग होने के बाद भेदाभेदारूप वस्तु का ज्ञाता हो जाता है**' जानना कोई राग का कारण नहीं। परंतु तुम रागी हो तब एक ऊपर (से) लक्ष्य छोड़कर इस (पर) लक्ष्य जायेगा तो तुम्हें रागी होने के कारण राग उत्पन्न होगा। आहाहा ! `**वीतराग होने के बाद भेदाभेद वस्तु का ज्ञाता हो जाता है,**' वीतराग हुआ तो अभेद वस्तु भी जानते है और गुण तथा पर्याय भेद भी वीतरागी जानते है, ***राग जाने के बाद भेदाभेद को जानना, परंतु जबतक राग है, तब तक अभेद की दृष्टि कराने भेद को गौण करके वीतरागी अनुभव कराया है।*** आहाहाहा ! पण्डितजी ने कितना अर्थ भरा है देखो, दोसौ वर्ष पहले जयचन्द्र पण्डितजी (हुये) है। (श्रोता :- स्पष्टीकरण करनेवाला भी तो कोई नहीं था, खोला भी तो आपने ही है) है कि नहीं ? यह वस्तु स्थिति है और वह सम्मत हो ऐसी है, पहले इसे दृष्टि में तो बैठ हो जाय, बात तो यह सच्ची है। (श्रोता :- ***बर्हिलक्षी ज्ञान में एकदम बैठ जाये - ऐसा है) पहले बर्हिलक्षी भले हो परंतु उसके ख्याल आ जाये कि दृष्टि अभेद ऊपर करने से सम्यग्दर्शन निर्विकल्पता होती है... भेद ऊपर लक्ष्य करने से... सभी तरह से वहाँ रूक गया। अब अंदर जाना यह प्रयत्न करना। समझ में आया ?*** आहाहाहा ! ***ज्ञान में पहले - ऐसा निश्चित हो जाये कि पर के आश्रय से तो लक्ष्य से तो राग होगा ही, क्योंकि मैं रागी प्राणी हूँ तो भेद ऊपर लक्ष करने से राग होगा..., अतः लक्ष्य करने लायक नहीं - ऐसा ज्ञान में निर्णय करें तब ज्ञान वहाँ रुक जाये। यह ज्ञान बाद में अंदर में जाये।*** आहाहा !

`**वीतराग होने के बाद भेदाभेदरूप वस्तु का ज्ञाता हो जाता है,** यहाँ अवलम्बन ही नहीं रहता।' वीतराग होने के बाद स्वरूप तरफ का आश्रय करना यह रहता नहीं अंदर से पूर्ण हो गया। आश्रय करना क्या रहा ? समझ में आया ? वीतराग होने के बाद, ***अभी जहाँ तक वीतराग नहीं, वहाँ तक स्व के आश्रय से... अभेद का आश्रय करना रहता है, और भेद को गौण करके... परंतु जब वीतराग हुआ तब फिर स्व का आश्रय करना रहा नहीं, तब पूर्ण हो गया।*** आहाहाहा !

`**भेदाभेद वस्तु का ज्ञाता हो जाता है-वहाँ नय का अवलम्बन ही नहीं रहता**' स्व का अभेद का आश्रय करना यह वहाँ रहता नहीं। पूर्ण हो गई दशा। अभेद का आश्रय करना यह तो निश्चय नय है... और (जब) रागी था भेद का लक्ष्य करने से राग होता था, भेद का लक्ष्य करने से राग होता है यह व्यवहार था, यह तो बाद में रहा नहीं। वीतरागता जब हुई वहाँ तो बाद में किसी नय का आश्रय करना

रहा नहीं। आहाहा ! ***व्यवहार का (आश्रय) छोड़ना और निश्चय का लेना, वीतराग होने के बाद तो - ऐसा, कुछ रहा नहीं।*** आहाहाहा ! कहो शकुनलालजी सुना कि नहीं यह ? ऐसी बात है बराबर सातमी गाथा के समय आ गये। आहाहा !

आहा ! भगवान यह तो तुम्हारे हित की बात है प्रभु ! यह कोई पक्ष नहीं, यह कोई संप्रदाय नहीं हाँ ? (श्रोता :- अपने हित की बात है) है ? तुम्हारे हित की बात है प्रभु ! तुम अभेद हो, उसकी दृष्टि रखना यह तुम्हारा हित है, भेद ऊपर लक्ष्य करने से तुम रागी हो तो राग होगा, तब अहित होगा। इसमें पक्ष की बात कहाँ रही ? यह सोनगढ़वाले ऐकांत कहते हैं और हमारा मार्ग अनेकान्त है ? प्रभु कहो प्रभु ! तुम भगवान हो न नाथ ! आहाहा ! तुम्हारे शक्ति और गुणों में तो कोई कमी है नहीं। आहाहा ! पर्याय में अंश में खामी है, तो एक समय की भूल है। आहाहा ! यह स्वभाव का आश्रय लेकर भूल टालेगी - ऐसा भगवान है, एक समय की भूल है आहाहा ! किसी के ऊपर द्वेष नहीं, विरोध नहीं करना। समझ में आया ? आहाहा ! चाहे जितना एकांती कहो तुम्हारे जो लक्ष्य में हैं तो तुम वैसा कह सकते हो ! परंतु वह उसमें...

जामें जितनी बुद्धि है, इतना देय, बताय,
ता को बुरो न मानिये, और कहाँ ते लाय।

भैया आहा... हा... यह गाथा पूरी हो गई। (प्रमाण वचन गुरुदेव !)